© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 12 Issue: 01 | January - March 2021
Paper is available at http://www.jrps.in | Email : info@jrps.in

गीता द्वारा आदर्श व्यक्तित्वनिर्माण

Kuldeep Singh, kuldeepkaushik4545@gmail.com

1) सारांश :-

गीता एक ऐसी ज्ञानगंगा है, जिसकी विचारधारा में समस्त आध्यात्मिक सत्य और उसकी सहज अनुभूतियों की लहरें स्पष्टतः हमें परिलक्षित होती हैं। गीता में दिव्यकर्म, दिव्यज्ञान, दिव्यभक्ति की त्रिवेणी एक साथ लहराती है। गीता व्यक्ति को परहितकारी बनाती है। इसका परहितव्रत किसी सीमा से आबद्ध नहीं है, यह तो जाति, धर्म, वर्ण या वर्ग-विशेष से परे प्राणिमात्र तक पहुँचाता है। आसक्ति और वासना के साधारण दोषों से प्रारम्भ कर गीता यह बतलाने का प्रयास करती है कि नित्य-नैमित्तिक कर्तव्यों का पालन करता हुआ व्यक्ति किस प्रकार शान्त, तुष्ट, स्थितप्रज्ञ एवं योगस्थ रहकर अपने व्यक्तित्व को उन्नत कर सकता है।

मुख्यशब्द: स्थितप्रज्ञ, गीता, दिव्यकर्म, दिव्यज्ञान, दिव्यभक्ति इत्यादि।

2) भूमिकाः-

'गीता' ऐसे मन्त्रद्रष्टा ऋषि के निजी अनुभवों पर आधारित है, जिन्हें परिवर्तन और आवागमन की इस दुनिया की परिधि में और उसके बाहर भी एक असीम आध्यात्मिक सत्ता की उपस्थिति का बोध था। मानव जाति की परमसत्ता के साथ एकत्व की विशेष निजि अनुभूति थी जिस अनुभूति की श्रृंखला युग-युगान्तर तक टूटी नहीं, जो आज भी अपने गहनतम भावों की सरलतम अभिव्यक्ति के रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं। भारतीय अध्यात्मचिन्तन के प्राणभूत, वैदिकसंस्कृति के सार स्वरूप गीता की महता है। गीता के सात सौ श्लोकों में वेदों का सार वर्णित है। इसकी भाषा जितनी सरल है,भाव उतने ही अधिक गम्भीर हैं, गीता के सन्दर्भ में एक प्रचलित गाथा के अनुसार व्यास जी ने अट्ठारह पुराण, नौ व्याकरण और चारों वेदों का मन्थन कर महाभारत की रचना की। उस महाभारत रूपी सागर का मन्थन करने से गीता प्रकट हुई और उस गीता का सार निकालकर कृष्ण ने धुनर्धर अर्जुन के मुख में डाल दिया था।

अष्टादशपुराणानि नवव्याकरणानि च।
निर्मथ्य चतुरो वेदान्मुनिना भारते कृतम्।।
भारतोदधिनिर्मथ्य गीतानिर्मथितस्य च।

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 12 Issue: 01 | January - March 2021
Paper is available at http://www.jrps.in | Email : info@jrps.in

सारमुद्धत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे धृतम्।।

वेदों की तरह गीता भी अपौरूषेय है। जिस प्रकार वैदिक आदेशों को यथारूप में बिना किसी मानवीय विवेचना के स्वीकार किया जाता है, उसी तरह गीता को भी मानवीय विकास सहित तर्क-वितर्क से परे यथास्वरूप ग्रहण करना चाहिए। आज गीता, वेदों एवं दार्शनिकों की बातें मनुष्य को कल्पना में कही गयी लगती है, यही विचारधारा मनुष्य को मनोवैज्ञानिक रूप से उस परासत्ता से दूर करती है जो यथार्थ में है गीता के द्वितीय अध्याय में इसी बात का वर्णन है कि "विषयों का चिन्तन करते रहने से मनुष्य के मन में उनके प्रति आसक्ति पैदा होती है।

ध्यायतो विषयान् पुंस:संगस्तेषूपजायते। 2/62

मनुष्य का चिन्तन विषय ही यदि शुद्ध या मोक्ष हेतु न होकर अपितु योग, ऐश्वर्य एवं दिखावे का है तो वह किस प्रकार अपने लक्ष्य को सार्थक करे ?

यह हमारे व्यावहारिक जीवन का दार्शनिक आधार है। भारतीय संस्कृति की एक संश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति है। गीता के रचयिता आध्यात्मिक समालोचक न होकर सर्वग्राही है वह न तो किसी सम्प्रदाय का समादेष्टा है न ही किसी सम्प्रदाय का संस्थापक, गीता के माध्यम से उसने मनुष्य मात्र के लिए व्यावहारिक जीवन का मार्ग प्रशस्त किया है। गीता का चरम लक्ष्य मनुष्य को जीवन के लिए व्यावहारिक शिक्षा देना है। गीता के अनुसार मनुष्य विभिन्नतत्वों का एक आकार है। यही कारण है कि चाहकर भी मनुष्य एक क्षण के लिए भी निष्क्रिय नहीं रह सकता कर्म तो उसकी विवशता है प्रकृति से अर्जित गुणों के अनुसार ही प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ कर्म करना ही पड़ता है।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवश:कर्म सर्व:प्रकृतिजैर्गुणै:।। 3/5

अपने कर्म से ही मनुष्य सर्वोच्च सत्ता तक पहुंच सकता है, बिना कर्म किए मनुष्य के शरीर का निर्वाह भी सम्भव नहीं है मनु ने भी कहा है कि मनुष्य को आलस्य रहित होकर वेदोक्त स्वकर्म करते रहना चाहिए।

वेदोदितं स्वकर्मनित्यं कुर्यादतन्द्रित:।
तद्धिकुर्वन्यथाशक्तिं प्राप्नोति परमां गतिम्।।

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 12 Issue: 01 | January - March 2021
Paper is available at http://www.jrps.in | Email : info@jrps.in

कर्म से ही व्यक्ति का संसार से सम्बन्ध स्थापित होता है जहाँ तक नैतिकता का प्रश्न है,वह शुद्धरूप से सांसारिक तथ्यों से सम्बद्ध है किन्तु मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा आध्यात्मिक सुख-प्राप्ति के लिए होती है। जगत् के भौतिक तत्त्वों से इस की उपलब्धि सम्भव नहीं है। विश्व की एकता गीता का आधारभूत सिद्धान्त है, कर्म करने का अधिकार तो सबको है किन्तु किसी भी व्यक्ति को कभी भी अपने कर्म फल का अपने आपको कारण नहीं मानना चाहिए।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। 2/47

'लोकसंग्रह' के निमित्त आसक्ति रहित होकर मनुष्य जो कुछ भी कर्म करे, उस कर्म को अर्पण कर दे, यह कर्म के सन्दर्भ में गीता का सारगर्भित समन्वयात्मक दृष्टिकोण है। इसी दृष्टिकोण के सिद्धान्त पर मनुष्य अपने व्यक्तित्व को सुदृढ बनाकर परम लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त कर सकता है।

3) गीता से 'तत्व' ज्ञान का बोध :-

भारतीय दर्शनों की एक समानता यह भी है कि वे अज्ञान को बन्धन का कारण मानते हैं। "महान् दार्शनिक सोक्रेटिस (Socrates) का कथन है कि "तत्वज्ञान ही धर्म है" उनके अनुसार तत्व का ज्ञान होने से ही मुक्ति मिल सकती है, हमारे कर्म स्वभावतः धार्मिक नहीं होते, उनकी उत्पत्ति बहुधा वासनाओं तथा नीच प्रवृत्तियों के कारण होती है। अतः जब तक तृष्णाओं तथा नीच प्रवृतियों का पूर्ण नियंत्रण नहीं हो सकता तब तक तत्वज्ञान सम्भव नहीं। गीता का दर्शनशास्त्र मनुष्य को तत्त्व विवेचना के बारे में बड़े ही सरल ढंग से ईश्वर एवं तत्व के सम्बन्ध को स्थापित कर उसकी व्याख्या करता है।

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।।

4) गीता से ज्ञानयोग द्वारा व्यक्तित्वनिर्माण :-

ज्ञान का महत्त्व बतलाते हुए गीता में कहा गया है कि जब मनुष्य के मन व बुद्धि पर सात्त्विक ज्ञान का प्रभाव पड़ता है तब दैहिक स्वभाव पर भी समबुद्धि रूप परिणाम प्रतिबिम्बत होने लगता है। जब विनम्रता, अहिंसा, सहिष्णुता, सरलता, गुरुसेवा, पवित्रता, आत्मसंयम, इन्द्रियतृप्ति के विषयों का

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 12 Issue: 01 | January - March 2021
Paper is available at http://www.jrps.in | Email : info@jrps.in

परित्याग,आत्म-साक्षात्कार की महत्ता इन सब गुणों से व्यक्ति का व्यक्तित्व पूर्ण होगा तभी व्यक्ति अज्ञान से बाहर आकर वास्तविक ज्ञान 'तत्व' के ज्ञान से लाभान्वित होगा। कहा भी गया है -

"आत्मवत्सर्वभूतेषु यःपश्यति स: पण्डितः"।

गीता के अनुसार ज्ञान की तरह पवित्र और कोई वस्तु नहीं है। केवल ज्ञान ही (व्यक्त एवं अव्यक्त) दोनों रूपों में मोक्ष और व्यक्तित्वनिर्माण का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नम् मन्यते मामबुद्धयः।
परम् भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।। 7/24

5) आदर्श मानव :-

गीता के अनुसार मानव जीवन का आदर्श क्या है? आदर्श मानव कैसा होता है ? वह जो गृह त्यागकर अरण्य की शरण लेता है अथवा वह जो इस संसार में विषम परिस्थितियों के ऊपर अपना प्रभुत्व जमा कर जीवन को आगे बढ़ाता है। इस विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं, परन्तु तथ्य तो यह है कि गीता व्यवहार-शास्त्र है, जो अध्यात्म-ज्ञान की दृढ़ भूमि पर अवस्थित है।

यतःप्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्य च्यसिद्धिं विन्दति मानवः।। 18/46

अर्थात् जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त हो जाता है –इस श्लोक के अनुसार सिद्धि लाभ का एक ही मार्ग है–परम सत्ता की अर्चना और वह सिद्ध होती है – स्वकर्म की उपासना से। फलतः मानव को चाहिए कि वह अपने वर्णाश्रम के द्वारा नियत कर्मों का सम्पादन करें और उनके फलों को परमसत्ता के चरणों में अर्पित करें और इस प्रकार उसे अपने जीवन में सिद्धि अवश्यमेव प्राप्त होती है। इस प्रकार स्वकर्म से भगवत्-चर्चा और भगवत्-चर्चा से सिद्धि- लाभ यह साधना का व्यावहारिक पक्ष गीता को अभीष्ट है। 'मामनुस्मरयुध्य च'(मुझे सतत् स्मरण करते हुए युद्ध करो, जीवन संग्राम में अपनी विरुद्ध शक्तियों से)-इसका भी आशय यह है कि इस प्रकार गीता संसार से भागने का उपदेश ही नहीं देती, प्रत्युत् संसार में डटकर खड़ा होने व अपनी विषम परिस्थितियों से जूझने तथा अन्त

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 12 Issue: 01 | January - March 2021
Paper is available at http://www.jrps.in | Email : info@jrps.in

में विजय पाने की उदात्त शिक्षा गीता हमें सर्वदा देती है। इसलिए गीता का आकर्षण सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक है। सब परिस्थितियों में सभी मनुष्यों के लिए इसका उपदेश समान रूप से उपयोगी है।

गीता ने आदर्श मानव का वर्णन तीन स्थलों पर किया है- स्थितप्रज्ञ (द्वितीय अध्याय 55-72), भक्त (12/13-19) तथा गुणातीत (14/21-27) ।यही गीताभिमत जीवन्मुक्त का भी लक्षण है। आदर्श मानव सब प्राणियों से मित्रता करने वाला, अद्वेष्टा, करुणा, ममता, अहंकार से हीन, दु:ख और सुख को समान मानने वाला तथा क्षमाशील होता है। वह न ही हर्ष करता और न ही द्वेष , न शोक करता है और न ही आकांक्षा रखता है। वह शुभ तथा अशुभ कर्मों के फल का त्याग करने वाला होता है। 'स्थितप्रज्ञ' का सामान्य लक्षण यही है।

दु:खेष्वनुद्विग्नमना:सुखेषु विगतस्पृह:।
वीतरागभयक्रोध:स्थितधीर्मुनिरुच्यते।। *2/56*

6) उपसंहार :-

मानव जीवन में सर्वोत्कृष्ट या सर्वश्रेष्ठ अनुभूत तथ्य मोक्ष है पर इसे प्राप्त करने के लिये ऊपर उठना, व्यक्तित्व को विकसित करना श्रम एवं साधना है, यही सच्चा पुरुषार्थ है ऊपर उठकर मुक्ति पाना जीवन की सर्वाधिक श्रेष्ठतम उपलब्धि एवं सुन्दरकला है।

"ऋते ज्ञानात् न मुक्ति: । "

गीता एक ऐसा महान् दार्शनिक ग्रन्थ है जिसने सभी विषयों को प्रश्न मानकर नाना शास्त्रों के, पुराणों के, उपनिषदों के, उत्तरों को श्रृंखलाबद्ध कर मनुष्य के व्यक्तित्व विकास के लिये रख दिया। गीता ने मनुष्य के ज्ञान को प्रथम आयाम से प्रारम्भ कर सिखाया, यदि आप स्वयं की सत्ता से अपिरिचत है तो ऐसे ज्ञान का क्या मूल्य, जिसके केन्द्र में स्व-ज्ञान न हो ?

न त्वेवाहं जातु नासं नत्वं नेमे जनाधिपा:।
न चैव न भविष्याम: सर्वे वयमत: परम् ।। *2/12*

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 12 Issue: 01 | January - March 2021
Paper is available at http://www.jrps.in | Email : info@jrps.in

व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास की प्रथम सीढ़ी स्व-ज्ञान से ही प्रारम्भ होती है क्योंकि प्रथम तो स्व ही निकट है दूसरी अवस्था प्रकृति, माया, अज्ञान का बोध तो बाद का विषय है परन्तु जिस ने स्व से अध्ययन प्रारम्भ नहीं किया तो आत्म-ज्ञान से अपने तत्व को वह अन्य में कहाँ खोजेगा ?

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वतः।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।। *15/55*

यद्यपि परज्ञान और पराभक्ति एक ही है और उनका चरम लक्ष्य भी मोक्ष प्राप्ति ही है तथापि निर्गुण उपासना को गीता' अधिक क्लेशयुक्त' और कठिन बताती है एवं सगुण उपासना का भी उपदेश देती है गीता में कृष्ण का मनुष्य को यही सन्देश है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। *18/66*

अर्थात् हे ! मानव सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा तू शोक मत कर। आज हर मनुष्य अपने किए पाप कर्म के कारण दु:खी एवं कुण्ठित है वह भी इन का प्रायश्चित कर पापों से छूटकारा चाहता है, इसलिए गीता ज्ञान के द्वारा जब अपने धर्म, वर्ण आश्रम आदि से विरक्त होकर ईश्वर की शरण में होगा तभी वह भगवदाश्रय के साथ-साथ भक्ति एवं मुक्ति को प्राप्त कर लेगा जो कि मानव जीवन का परमलक्ष्य है यही मानव के व्यक्तित्व की सर्वश्रेष्ठ अवस्था है जिसमें वह स्थितप्रज्ञ है, गीता के अनुसार मानव जीवन के लिए यही आदर्श व्यक्तित्व है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रःकरुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदु:खसुखःक्षमी।।

गीता की दृष्टि में ऐसा ही मानव जगत् का उपकार करने वाला तथा स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय कर जीवन की लक्ष्य सिद्धि करने वाला होता है।

संदर्भग्रन्थसूची

1.गीतारहस्य-तिलक,लोकमान्य,किताबमहल,इलाहाबाद,1919.

2.गीतारहस्य-तिलकलोकमान्य,बालगंगाधर,मोतीलालबनारसीदास,मुम्बई,1975.

3.श्रीमद्भगवदगीता-शारभाष्य,गीता प्रेस,गोरखपुर,1955.

4.श्रीमद्भगवदगीता-असलीलाहौरी,रणधीरप्रकाशन,हरिद्वार,1998.

5.श्रीमद्भागवतपुराण-वेदव्यास महर्षि, हिन्दी अनुवाद, स्वामी अखण्डानन सरस्वती, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1970

6.महाभारत-वेदव्यास महर्षि, हिन्दी अनुवाद, स्वामी अखण्डानन सरस्वती, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1978

7.मुक्तिकोपनिषद्-रामतीर्थ,स्वामी गीता प्रेस, गोरखपुर, 2002

8.मनुस्मृति-योगन्द्रानन्द,चौखम्बाविद्याभवन,वाराणसी,1996.

9.तत्वटीका-वेटनाथ,निर्णयसागर,प्रेस,बम्बई,1976.

10.भारतीयदर्शन-चटर्जीएवंदास,परिमलपब्लिकेशन,दिल्ली,1995.